DSSSB TGT & PGT
SCHOLAR BATCH
संस्कृत
DSSSB TGT & PGT
Part-B
SCHOLAR BATCH
संस्कृत
शुकनासोपदेश
Part -4
LIVE
26-06-2024 05:00 PM

गुरूपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षममजल- स्नानम्, अनुपजातपलितादिवैरूप्यमजरं वृद्धत्वम्, अना- रोपितमेदोदोष' गुरूकरणम्, प्रसुवर्णविरचनमग्राम्यं कर्णा- भरणम्, अतीत ज्योतिरालोकः, नोद्वेगकरः प्रजागरः । विशेषेण राज्ञाम् । विरला हि तेषामुपदेष्टारः । प्रति- शब्दक इव' राजवचनमनुगच्छति जनो भयात् । उद्दामदर्प- श्वयथुस्थगित श्रवणविवराश्चोपदिश्यमानमपि ते न शृण्वन्ति । शृण्वन्तोऽपि च गजनिमीलितेनावधीरयन्तः खेद-

यन्ति हितोपदेशदायिनो गुरून् । श्रहङ्कारदाहज्वरमूर्च्छान्ध- कारिता विह्वला हि राजप्रकृतिः, प्रलीकाभिमानोन्माद- कारीणि धनानि, राज्यविषविकारतन्द्रीप्रदा' राजलक्ष्मीः '

संस्कृत टोका- च- किञ्च, गुरुपदेशः- गुरुणाम् हितोपदेष्टुणाम् उपदेशः शिक्षा ( प० त० ), नाम - कोमलामन्त्रणार्थं कमव्ययमिदम्, पुरुषाणाम्- जनानाम्, घरिवलमलप्रक्षालनक्षमम्— अरिवलः समस्तः यो मलः कालुष्यम् कामक्रोधादिरित्यर्थः ( कर्म० स० ) तस्य प्रक्षालनं शुचीकरणं ( ष० त० ) तस्मिन् क्षमम् समर्थम् (स० त० ),

अजलस्नानम् — जलरहितस्नानम्, अनु- पंजातपलितादिवैरूप्यम् — श्रनुपजातम् श्रनुत्पन्नम् पलितादि वार्धक्यप्रयुक्तकेशदवे- तत्वादि वैरूप्यं विकृतिर्यस्मिन् तत् तादृशम् ( ब० स० ), ( तथा अजरम्—न विद्यते जरा जीर्णत्वं यस्मिन् तथाभूतम् ( ब० स० ), वृद्धत्वम् - स्थविरत्वम्, घनारोपितमेदोदोषम् — न श्रारोपितः उत्पादितः मेदोदोषः स्थूलत्वोत्पादक मेदो- नामकघातुवृद्धिदोषो येन तत् तथाविधम् (न० ब० स० ), गुरूकरणम् - गोरखहेतुः, असुवर्णविरचनम् --न सुवर्णेन स्वर्णेन विरचना निर्माणं यस्य तत् तादृशम् ( न० ब० स० ), श्रग्राम्यम् - ग्राम्यत्वदोष रहितम्

प्रशस्यमित्यर्थः, कर्णाभरणम् — कर्णभूषणम् श्रतीतज्योतिः —— प्रतीतं गतं ज्योतिः तेजः यस्मात् स एवंभूतः ( ब० स० ), आलोकः - प्रकाशः, नोद्वेगकरः -- न सन्तापजनकः, प्रजा- गरः—जागरणभ् । राज्ञां - - नृपाणाम्, विशेषेण श्राधिक्येन ( गुरूपदेशः उप- कारी भवति ) । हि--यतः, विरलाः -- प्रल्पाः (एव), तेषां राज्ञाम्, उप- देष्टारः -- उपदेशदातार ( भवन्ति ) । प्रतिशब्दक इव प्रतिध्वनिरिव, जनः— —लोकः, भयात् — त्रासात्, राजवचनं राज्ञः नृपस्य वचनं वचः (ष० त०), अनुगच्छति धनुसरति ( न तु प्रत्युत्तरं दातुं समर्थ इति भावः) । उद्दामदश्वयथुस्थगितश्रवणविवराः - उद्दामा : उत्कटाः दर्पाः

अहंकाराः एव श्वयथवः शोथाः तः स्थगितानि श्राच्छादितानि श्रवणविवराणि कर्ण च्छिद्राणि येषां ते तथाविधाः, ते राजानः, उपदिश्यमानमपि कथ्यमानमपि, न शृण्वन्ति न ग्राकर्णयन्ति । शृण्वन्तोऽपि श्राकर्णयन्तोऽपि गजनिमी लेतेन- आगे भी 'प्रजागरः' तक तत्तत् वस्तुओं से गुरूपदेश में विशिष्टता होने के कारण यही अलंकार समझना चाहिए । गुरूकरणम् = स्थूल या गौरवान्वित करना । गुरु + वि, दीर्घं / कृ + ल्युट् न । विरचनावि/ रव् + णिच् + युच्धन, टाप् । प्रग्राभ्यम् -- ग्राम् + ष्यव्= ग्राम्यम् न ग्राम्यम् श्रप्राम्यम् ( न० त० ) । प्रजागरः=जागना । प्र / जागृ ( निद्राक्षये) + प् ।

उपवेष्टारः - उप/दिश्+ तृच् (प्रथमा बहुवचन) । प्रतिशब्दकः - शब्दं प्रतिगतः इति प्रतिशब्दः ( प्रा० स० ), प्रतिशब्दः एव प्रतिशब्दकः प्रतिशब्द + क ( स्वार्थे) प्रतिशब्दक इस वाक्य में उपमा अलंकार है । उद्दामदर्पश्वययुस्थगितश्रवणविवराः- श्रवणस्य विवराणि ( ष० त० ), उद्दामाश्च ते दर्पा : ( कर्म० स० ), उद्दामद एव श्वयथवः ( मयू० स० ), तैः स्थगितानि श्रवणविवराणि येषां ते ( ब० स० ) 1 उद्दाम -- उद्गताः दाम्नः इति उद्दामा : ( प्रा० स० ) । श्वययु = सूजन | स्वि ( वृद्धि ) + अथुच् । स्थगित -- प्राच्छादित | / स्थग् ( संवरण) + क्त । धवणविवर — कान का बिल, कर्णकुहर । उपदिश्यमानम् — उप/दिश् + लट्

( कर्मणि ) + क् + शानच् मुगागम । 'उद्दाम...' इस वाक्य में निरङ्गकेवल- रूपक अलंकार है । गजनिमीलितन देखने का बहाना; लापरवाही । गजस्य यन्निमोलितं तद्वन्निमीलितेनेत्यर्थः । श्रवधीरयन्तः = तिरस्कार करते हुए । अव / घर् + णिच् + लट् शतृ ( प्रथमा बहुवचन ) । हितोपदेशदायिनः - हितानाम् उपदेशः ( प० त० ), तं दातुं शीलमेषाम् इत्यर्थे हितोपदेश/दा + णिनि (द्वितोया बहु० ) । ' शृण्वन्तोऽपि ......' इस वाक्य में लुप्तोपमा अलंकार है ग्रहङ्कारवाहज्वरमूर्च्छान्धिकारिता — प्रहङ्कार एवं दाहज्वरः ( मयू० स० ) तेन मूर्च्छा (तृ० त० ) वा तद्धेतुका मूर्च्छा (मध्य० स० ) तया

अन्धकारिता (तु० त० ) । प्रन्धकारिता — अन्धकार इव प्राचरति इति अन्धकारति ( नामघातु), अन्धकार + क्विप् + क्त - टाप् । प्रलीकाभिमानोन्मादकारीणि - अलीकः अभि- मानः ( कर्म० स० ) तज्जन्यः उन्मादः ( मध्य० स० ) तं कर्तुं शीलमेषाम् इति विग्रहे अलीकाभिमानोन्माद / कृ + णिनि (प्रथमा बहु० ) । राज्यविषविकार- तन्द्रीप्रवा - राज्यम् एव विषम् (मयू० स० ) तदुत्पन्नः विकारः ( मध्य० स० ) तज्जन्या तन्द्री ( मध्य० स० ) तस्याः प्रदा ( प० त० ) । 'महङ्कार..... इस वाक्य में निरङ्ग केवल रूपक अलंकार है ।

गुरूपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षमम् अजलं' स्नानम्, अनुपजातपलितादिवैरूप्यमजरं वृद्धत्वम्, अनारो- पितमेदो दोषं गुरूकरणम्, असुवर्णविरचनम् अग्राम्यंकर्णा- भरणम्, अतीत ज्योतिरालोकः, नोद्वेगकरः प्रजागरः ।

**अर्थ-** वस्तुतः गुरु का उपदेश तो मनुष्यों के समस्त मलों (विकारों) को धो डालने में समर्थ जल-रहित स्नान है, श्वेतकेशता आदि कुरूपता से रहित और बुढ़ापे से रहित वृद्धत्व है, चर्बी में (वृद्धि आदि) दोषों के आरोपण से मुक्त गुरुता (महत्ता) प्रदान करने का साधन है, बिना सोने के बना हुआ उत्कृष्ट (अग्राम्य) कर्णाभूषण है, (भौतिक) ज्योति से रहित प्रकाश है तथा उद्वेग (बेचैनी) न उत्पन्न करने वाला जागरण है।

**टिप्पणी** - गुरु के उपदेश की महत्ता को ही एक अन्य ढंग से प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार जल से स्नान करने से शरीर का मैल पूरी तरह घुल जाता है, उसी प्रकार गुरु का उपदेश भी काम-क्रोध आदि मानसिक विकारों को दूर करने में समर्थ स्नान ही है। अन्तर इतना है कि यह स्नान जल के बिना ही हो जाता है। इस प्रकार यहां गुरु के उपदेश में स्नान का आरोप करके इस स्नान को 'अजल' कह कर आधिक्य सूचित किया गया है, अतः यहां 'अधि-कारूढवैशिष्ट्यरूपक' अलंकार है। इसी प्रकार साधारणतः बाल पक

जाने पर, झुर्रियां पड़ने पर तथा अङ्ग शिथिल हो जाने पर व्यक्ति वृद्ध समझा जाता है किंतु गुरु का उपदेश शान्ति एवं सदसद्विवेक देने के कारण ऐसा वृद्धत्व (बड़प्पन) है जिसमें बालों का सफेद होना आदि विकार नहीं आते हैं और न ही शरीर में किसी प्रकार की जीर्णता आती है। श्वेतकेशता आदि विकारों का न होना तथा जरा का न होना इस वृद्धत्व का वैशिष्ट्य है, अतः अलंकार पूर्ववत् 'अधिकारूढ वैशिष्ट्यरूपक' है। शास्त्रों में वृद्ध चार प्रकार के माने गए हैं- वयोवृद्ध, ज्ञान- वृद्ध, धर्मवृद्ध तथा तपोवृद्ध। इनमें वयोवृद्ध (आयु में बूढ़ा) की

अपेक्षा अन्य तीन प्रकार के वृद्ध अधिक पूज्य व प्रतिष्ठित माने गए हैं। कालिदास कहते है- 'न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते' (कुमार०, ५.१६)। भगवान् मनु के वचन है 'न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः। ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥' 'विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यम्'। 'न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः। यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥' (मनु०, २०१५४-१५६)।

चर्वी के चढ़ने से मनुष्य में गुरुता (स्थूलता) आती है किंतु गुरु का उपदेश मेदोदोष के बिना ही गुरुता (महत्ता) प्रदान करता है। अर्थात् गुरु के उपदेश से दूरदर्शिता प्राप्त कर मनुष्य गौरवान्वित होता है। बिना चर्बी चढ़े ही गुरूपदेश का गुरूकरण होना गुरुता के अन्य साधनों से वैशिष्ट्य है, श्रतः 'अधिकारूढवैशिष्ट्यरूपक' अलंकार है। आयुर्वेद में मेदोदोष को एक- असाध्य रोग बताया गया है। 'व्यायाम न करने से, दिन में सोने और कफ- कारक भोजन करने वाले मनुष्य का अन्नरस स्नेह के कारण प्रायः चीं को बढ़ा ८ देता है। अतः मेद से मार्ग के रुक

जाने के कारण दूसरे धातु पुष्ट नहीं होते, जिससे मनुष्य सभी कर्मों में अशक्त हुआ क्षुद्र श्वास, तुषा, मोह, निद्रा, गले में पुखुराहट, अवसाद, क्षुधा, स्वेद और दुर्गन्ध से युक्त एवं क्षीणवल और मैथुन में अल्पशक्ति वाला हो जाता है। मेद के बहुत बढ़ जाने पर सहसा वायु आदि शरीरस्थ तत्त्व भयंकर विकारों को उत्पन्न कर शीघ्र ही जीवन को नष्ट कर देते हैं' (द्र० मानि०, ३४.१-३,८)।

स्वर्ण-निर्मित तथा कलात्मक (अग्राम्य) कान के गहने ही कान की शोभा को बढ़ाते हैं किंतु गुरु का उपदेश तो स्वर्ण-निर्मित न होने पर

भी अति सुन्दर कर्ण-भूषण है, क्योंकि कर्णगोचर होने के साथ ही चित्त को सुशोभित करता है। सोने से बने आभूषण में तो कलात्मकता के अभाव में अथवा कस चढ़ जाने से ग्राम्यतादोष आ जाता है किंतु गुरु के वचन अश्लीलतारूप ग्राम्यदोष से सर्वथा मुक्त होते हैं। विना सोने के बनना और ग्राम्यता से बिल्कुल अछूता रहना गुरूपदेशरूपी कर्णाभरण का साधारण कर्णाभरण से वैशिष्ट्य है, अतः यहां भी 'अधिकारूढवैशिष्ट्यरूपक' अलंकार है।

गुरु का उपदेश ज्योति से अतीत अर्थात् नेत्र-ग्राह्य नहीं है; उसे बुद्धि ही ग्रहण कर सकती है। तो भी सन्मार्ग का आलोकन (दर्शन) कराने वाला है। अथवा 'यह ऐसा प्रकाश है जिसकी चमक सूर्य, चन्द्रादि ज्योतियों से बढ़ कर है' (द्र० काद० सां० अ०, पृ० १२२)। भाव यह है कि सूर्य का प्रकाश दिन में ही रहता है तथा चन्द्र आदि नक्षत्रों का रात्रि को ही, किंतु गुरु के उपदेश से प्राप्त ज्ञान- प्रकाश तो सदा प्रदीप्त रहता है। तथा कुछ विद्वानों के अनुसार सूर्य श्रादि पदाथों से उत्पन्न प्रकाशों में

(दाहक) तेज विद्यमान रहता है किंतु गुरु का उपदेश ऐसा ज्ञान का प्रकाश है जिसमें चौंध नहीं होती। 'अधिकारूढ- वैशिष्ट्यरूपक'।

रात्रि-जागरण सदा उद्विग्नता या बेचैनी पैदा करता है किंतु गुरु का उपदेश ऐसी जागृति है जिससे शरीर को बेचैनी या थकावट नहीं होती। यह जागरण जीवन के प्रत्येक पग में सावधानी प्रदान कर के उद्वेग को समाप्त करने वाला होता है। अन्य जागरण तो कष्टकर होता है लेकिन गुरूपदेशरूपी जागरण नहीं - यह इसका वैशिष्ट्य है, अतः अलंकार 'अधिकारूढवैशिष्ट्य- रूपक' ही है।